

आधुनिक काल में वराहपुराणकालीन शैक्षिक परम्परा की उपादेयता

डॉ. रूपेश कुमार
पी.—एच.डी., संस्कृत

शिक्षा सदैव चलने वाली सोदेश्य सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। वराहपुराणकालीन समाज इस दिशा में हमेशा अग्रसर रहा है। उस समय विद्यार्थी गुरु के परिवार के सदस्य के रूप में रहकर शिक्षा प्राप्त करता था। अतः गुरु प्रत्येक विद्यार्थी के शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास पर पूरा ध्यान दे सकता था। विद्यार्थियों को गुरु के पूर्ण अनुशासन में रहकर सादगी का जीवन बिताना होता और सदा ही उच्च नैतिक नियमों का पालन करना होता था। साथ ही उन्हें पूर्ण बौद्धिक स्वतंत्रता थी, इससे वे अपने चरित्र निर्माण कर लेते थे। इसी कारण वे गृहस्थ जीवन में अपनी उन्नति के साथ-साथ सफलता पूर्वक समाज के प्रति अपने सभी कर्तव्यों की पूर्ति कर सकते थे।

वराह पुराण कालीन समाज में विद्यार्थी जीवन का प्रारम्भ उपनयन संस्कार के बाद होता था। यह मनुष्य की प्रथम अवस्था होती थी, जिसमें विद्यार्थी ब्रह्मचारी के रूप में रहकर विद्या ग्रहण करता था। विद्या से विद्यार्थी की बुद्धि का विकास होता था और उसे भले और बुरे की पहचान करनी आती थी। उसमें नैतिकता की भावना दृढ़ होती थी। वह दूसरों के प्रति जो अकारण द्वेष की भावना रखता था, वह दूर होती थी। वह दूसरों के प्रति सहानुभूति पूर्ण और तर्कसंगत व्यवहार करता था। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी की सभी अंतःशक्तियों का पूर्ण विकास करके उसकी व्यक्तिगत उन्नति करना और समाज के लिए उसे अधिक उपयोगी बनाना था। इस काल में ब्राह्मण विद्यार्थियों को विशेष रूप से व्याकरण, तर्कशास्त्र, आयुर्वेद, अथर्वविद्या, वैदिक साहित्य और दर्शन ग्रंथ पढ़ाये जाते थे, जिससे वे अपनी नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति कर सकें। चरित्र निर्माण के द्वारा व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण भी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था। क्षत्रिय विद्यार्थी भी बौद्धिक प्रशिक्षण के साथ-साथ नैतिक अनुशासन की व्यापक शिक्षा प्राप्त करते थे। इस काल के कुछ प्रसिद्ध शासक प्रसिद्ध कवि थे। इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उन्हें संस्कृत साहित्य की पर्याप्त शिक्षा दी जाती थी। इस काल के प्रसिद्ध राजाओं में जो उच्च कोटि के कवि भी थे, उनमें हर्ष, महेन्द्र वर्मा और यशोवर्मा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शिक्षा के क्षेत्र में वैश्यों की स्थिति जहां तक वैदिक साहित्य का संबंध है, संभवतः शूद्रों से कुछ अधिक अच्छी न थी। वे मुख्य रूप से व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त करते थे। हां चरित्र निर्माण पर उनकी शिक्षा में भी पर्याप्त बल दिया जाता था।

इस काल की स्मृतियों में भी विद्यारंभ संस्कार का विस्तार सहित वर्णन मिलता है। बालक पाँच वर्ष की अवस्था में अपनी शिक्षा प्रारंभ करता था उसे अक्षरों और शब्दों का ज्ञान कराया जाता था और गणित पढ़ाया जाता था। युवानच्वांग ने ब्राह्मणों की

विद्वत्ता और उसके शिक्षा देने के उत्साह की बहुत प्रशंसा की है। उसके अनुसार ब्राह्मण विद्यार्थी तीस वर्ष की अवस्था तक शिक्षा प्राप्त करते थे। उसने ऐसे अध्यापकों का भी उल्लेख किया है, जो जीवन भर अध्ययन और अध्यापन के लिए निर्धन रहकर सादा जीवन बिताते थे। बाण ने भी लिखा है कि वह 14 वर्ष की अवस्था में शिक्षा प्राप्त करके गुरु के घर लौटा था। कदंबवंशीय मयूर शर्मा ने भी कांची की घटिका में धर्मग्रंथों का अध्ययन किया था। घटिकाएं वे शिक्षा संस्थाएं थी, जिन्हें राजा या धनी व्यक्ति स्थापित करते थे। मेधातिथि ने प्राचीन स्मृतिकारों की परंपरा का अनुसरण करके दो प्रकारों के विद्यार्थियों का उल्लेख किया है : नैष्ठिक जो जीवनभर शिक्षा प्राप्त करते थे और उप-कुर्वाण जो शिक्षा समाप्ति पर गुरु दक्षिणा देकर गृहस्थ जीवन बिताने की इच्छा से घर लौट आते थे। किंतु नारदीय पुराण के अनुसार जीवन भर विद्यार्थी रहना और आदित्य पुराण के अनुसार दीर्घकाल तक विद्यार्थी रहना कलिवर्ज्य है। इससे स्पष्ट है कि इस काल में साधारणतया विद्यार्थी शिक्षा समाप्ति के बाद घर लौट आते थे। मेधातिथि के अनुसार विद्यार्थी को प्रतिदिन भिक्षा करके भोजन प्राप्त करना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि कुछ विद्यार्थी इस काल में भी भिक्षा में प्राप्त भोजन से अपनी उदर पूर्ति करते थे। वराह पुराण में लिखा है कि जो ब्राह्मण अध्यापन कार्य के लिए शुल्क ले उसे श्राद्ध में आमंत्रित न किया जाए। किन्तु मत्स्य पुराण अध्यापकों को पढ़ाने के लिए शुल्क लेने की अनुमति देता है। इसका यह अर्थ है कि इस काल में कुछ अध्यापक पढ़ाने के लिए शुल्क लेने लगे थे। मेधातिथि के अनुसार यदि कोई अध्यापक पहले शुल्क निश्चित करके पढ़ाना आरंभ करें तो यह पाप है, किन्तु यदि शिक्षा-समाप्ति पर शिष्य अध्यापक को कुछ धन दे तो यह धन लेना धर्म-विरुद्ध नहीं है। मेधातिथि के अनुसार शिक्षा समाप्त करने के बाद विद्यार्थी शहद, मांस आदि का भोजन कर तो सकता था किंतु जब तक उसका विवाह न हो ब्रह्मचर्य से रहता था। विद्यार्थियों को भिक्षा में उतना ही भोजन लेने की अनुमति दी गई है जितना उनके लिए आवश्यक हो। वैदिक ग्रंथों के अध्ययन करने के लिए उसे सादगी का जीवन बिताना अनिवार्य था वह शहद और मांस का भोजन नहीं करता था और शरीर पर उबटन और आंखों में सुरमा आदि नहीं लगाता था, वह अपने गुरु की निंदा नहीं करता था, वह न किसी सवारी पर यात्रा करता, न जूता और छत्री धारण करता, वह न स्त्रियों का स्पर्श करता और न उनकी ओर देखता, उसके लिए गायन और नृत्य में भाग लेने की अनुमति नहीं थी।

वराह पुराण समकालीन शिक्षा व्यवस्था में उच्च शिक्षा के लिए सामूहिक संस्थाओं का उदय इस काल की प्रमुख विशेषता है। आठवीं शती ईसवी से हिंदू मंदिरों में महाविद्यालय स्तर की शिक्षा का प्रबंध होता था। दक्षिण भारत में लगभग एक दर्जन महाविद्यालय थे। इनमें अनेक अध्यापक सैकड़ों विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा देते थे। विद्यार्थियों से रहने और खाने का कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। इन महाविद्यालयों के पुस्तकालयों में अनेक हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रह विद्यमान थे। इस काल में भी साहित्यिक और सांस्कृतिक शिक्षा संस्कृत के द्वारा होती थी। जनसाधारण में संस्कृत जानने वालों की संख्या बहुत कम थी, अतः वे इस प्रकार की शिक्षा से वंचित रह गए। वे अपने

घर में ही या किसी शिल्पी के पास जाकर केवल व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करते थे। कन्याओं का विवाह अब आठ से दस वर्ष की अवस्था में होने लगा। इसके फलस्वरूप उनकी शिक्षा में अधिक शिथिलता आ गई। इस काल के कोशों में कहीं भी अध्यापिकाओं का उल्लेख नहीं है। मेधातिथि लिखता है कि उसके समय में स्त्रियां संस्कृत नहीं जानती थी। किंतु राजशेखर से हमें ज्ञात होता है कि अनेक राजकुमारियां, अभिजात कुलों की कन्याएं और वेश्याएं इस काल में भी संस्कृत काव्य और शास्त्रों में निपुण होती थी। कल्हण ने अपने ग्रंथ सूक्ति मुक्तावली में राजशेखर के कुछ श्लोक उद्धृत किए हैं जिनमें उसने शील-भट्टरिका, विकट नितम्बा, विजयांका, प्रभुदेवी और सुभद्रा नाम की पांच कवयित्रियों की प्रशंसा लिखी है। राजशेखर की पत्नी अवंतिसुंदरी स्वयं संस्कृत साहित्य में पारंगत थी। राजशेखर के नाटकों से हमें ज्ञात होता है कि राजसभा की स्त्रियां और रानियों की सेविकाएं संस्कृत और प्राकृत में मनोहर श्लोकों की रचना कर सकती थी। उपमितिभव-प्रपंच-कथा में दी हुई कथाओं से स्पष्ट है कि अनेक राजकुमारियां चित्र-कला, संगीत और कविता करने में निपुण होती थी।

इस काल के साहित्य और अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण विद्यार्थी वेद, शास्त्र और छः दर्शन पढ़ते। वे तर्कशास्त्र, पुराणों, नाटकों, स्मृतियों और काव्यग्रंथों का भी अध्ययन करते थे। व्याकरण, साहित्य और तर्कशास्त्र की शिक्षा पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया जाता था। तर्कशास्त्रवेत्ता और छंदशास्त्रवेत्ता अपना विषय तो पूर्णरूप से जानते थे, किंतु उन्हें अन्य विद्याओं का थोड़ा भी ज्ञान न होता था। गणित की शिक्षा बहुत कम दी जाती थी और भूगोल के शिक्षण की प्रायः उपेक्षा की जाती थी। दूसरे देशों के ज्ञान की प्रगति से भारतीय पूर्णतया अनभिज्ञ थे। वे अपने देश के ज्ञान-विज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ समझते थे। सामूहिक संस्थाओं में उनकी प्रबंध-समितियां पाठ्य विषय निर्धारित करती थी। इनमें साधारणतया दर्शनशास्त्र की विभिन्न शाखाओं : विधि, संस्कृति साहित्य, गणित और ज्योतिष आदि की शिक्षा दी जाती थी। युवानच्वांग के वर्णन से हमें ज्ञात होता है कि सातवीं शती ईसवी में भी ब्राह्मण विद्यार्थी वेदों और 18 विद्याओं का अध्ययन करते थे। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य विद्यार्थी नाट्य कला, चित्र कला, फलित-ज्योतिष, कुक्कुट-विद्या, अश्वविद्या, हस्तिविद्या, राजनीतिक-विज्ञान, ज्योतिष, व्याकरण, गणित और परविद्या की भी शिक्षा प्राप्त करते थे। क्षत्रियों की शिक्षा पर पूर्ण ध्यान दिया जाता था। इस काल के अनेक राजा संस्कृत साहित्य के पंडित और कुशल कवि थे। इस संबंध में यशोवर्मन, महेन्द्रवर्मन और हर्ष के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मानसोल्लास से हमें ज्ञात होता है कि राजकुमारों को वैदिक साहित्य के साथ-साथ सैनिक शिक्षा भी दी जाती थी। जब राजकुमार घोड़े और हाथी की सवारी और रथों का चलाने का प्रशिक्षण पूरा कर लेते थे तो राजा स्वयं उनकी इन विद्याओं की परीक्षा लेता था। वेद, तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र, व्याकरण, ललित कलाओं, धनुष आदि के प्रयोग आदि में भी राजकुमारों की परीक्षा ली जाती थी। मेधातिथि ने लिखा है कि वैश्य विद्यार्थी को जानना चाहिए कि मणियां, मोती, मूंगा, तांबा, लोहा, कांसा, कपड़ा, इत्र किस प्रदेश में और किस ऋतु में अधिक मूल्य में बिकते हैं। उसे यह भी जानना चाहिए कि किस मिट्टी में बीज पास

बोना चाहिए और किस मिट्टी में दूर-दूर बोना चाहिए। किस मिट्टी में कौन फसल अच्छी हो सकती है। उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि वैश्यों को बाजारों के बिषय में पूरी जानकारी प्राप्त करनी पड़ती थी। इस समय की शिक्षा व्यवसायोन्मुखी थी, सभी शिक्षा ग्रहणकर गृहस्थजीवन सम्यक् रूप से जी सकता था।

शिक्षा का उद्देश्य :- प्राचीन काल में शिक्षा को प्रकाश और शक्ति का स्रोत समझा जाता था। इसके द्वारा मनुष्य अपनी बुद्धि प्रखर कर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में ठीक मार्ग का अनुसरण कर सकता था। शिक्षा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास कर इस संसार में और परलोक में जीवन के वास्तविक सुख को प्राप्त कर सकता था। शिक्षा का अंतिम ध्येय सांसारिक प्रलोभनों से मुक्त होकर वास्तविक सत्य की खोज करना था, जिससे मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति कर सके। मनुष्य अन्य व्यक्तियों को शिक्षा देकर पूर्वजों से उन्नत हो सकता था। तात्पर्य यह है कि शिक्षा प्राप्त करने का जीवन में बहुत महत्त्व था। ब्रह्मचर्य आश्रम में चरित्र निर्माण करके और ज्ञान की प्राप्ति करके प्रत्येक विद्यार्थी अपने को समाज के लिए उपयोगी बनाता था, स्वयं आध्यात्मिक उन्नति करके अपने जीवन के लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसर होता था। वराह पुराण कालीन शिक्षा व्यवस्था के कुछ उद्देश्य से उपरलिखित प्राचीन भारतीय व्यवस्था के उद्देश्य का तुलनात्मक अध्ययन करें तो वराह पुराण कालीन शिक्षा के उद्देश्य पूर्ववर्ती शिक्षा का विकास क्रम दिखता है, जिसकी निरंतरता अद्यावधि तक जारी है। जहाँ ऋग्वैदिक और उत्तरवैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य पारलौकिक शक्ति को प्राप्त करना था और जीवन को आध्यात्मिक ज्ञान से मोक्ष के ज्ञान की ओर ले जाना था। वहीं स्मृति काल से गुप्त काल तक आते-आते शिक्षा पारलौकिक शक्ति के जगह सामाजिक होने लगा। इतना ही नहीं वराह पुराण काल आते-आते शिक्षा में ये सब गुण तो स्वीकारणीय था ही साथ-साथ शिक्षा का व्यवसायिक करण किया गया, जिसमें तत्कालीन मानव अपने पूर्ण बौद्धिक शक्ति का विकास कर सकें, इस समय जहाँ ब्राह्मण विद्यार्थी, व्याकरण, तर्कशास्त्र, आयुर्वेद, अथर्वविद्या, वैदिक साहित्य और दर्शन ग्रंथ का ज्ञान अर्जित करते थे और क्षत्रिय बौद्धिक प्रशिक्षण के साथ-साथ नैतिक अनुशासन का व्यापक शिक्षा ग्रहण करते थे। वहीं पर वैश्य व्यवसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। इस काल में शिक्षा का उद्देश्य मानव के अन्तः शक्तियों का पूर्ण विकास करके उसके व्यक्तिगत उन्नति करना और समाज के लिए उसे अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाना था।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से चली आ रही विद्या के अध्ययन अध्यापन का क्रम सतत् जारी रहा जिसको तत्कालीन वराह पुराण कालीन समाज अपने आप में संयोगे रखा और उसके विकासात्मक रूप स्वीकार कर उसके संगरक्षण एवं समाज के रचनात्मक विकास में पूर्णतः योगदान दिया, जो भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के साथ आज भी प्रासंगिक हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. वराह पुराण।

2. अपरार्क टीका याज्ञवल्क्य ।
3. वाटर्स, युवानच्वांग ।
4. मेधातिथि टीका मनुस्मृति ।
5. आदित्य पुराण उद्धृतत स्मृतिचंद्रिका ।
6. काव्यमीमांसा ।
7. इत्सिंग रेकर्ड ।
8. मानसोल्लास ।
9. कुट्टनीमतम् ।
10. ऋग्वेद ।
11. अथर्ववेद ।
12. विन्टरनिट्ज : प्राचीन भारतीय साहित्य (प्रथम भाग, प्रथम खण्ड) ।
13. वैदिक साहित्य और संस्कृति : बलदेव उपाध्याय ।
14. संस्कृत साहित्य परिचय : डा. कमला कान्त मिश्र, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ।
15. श्रीमद्भागवत का सांस्कृतिक अध्ययन : डा. जवाहर लाल शर्मा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी ।
16. संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास, डा. सूर्यकान्त ।
17. संस्कृत भाषा एवं साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : डा. टी. जी. माईणकर ।